सुखसाधन ग्रन्थमाला पुष्प १

* श्री पार्श्वनाथायनमः *

उपदेश-रत्न-कोष।

सुख से जिन्दगी व्यतीत करने का
व्यवहारिक उपदेश।

श्री जिनेश्वर सूरिकृत प्राकृत ग्रन्थ का गुजराती
भाषान्तर करने वाले—

श्री० मोहनलाल जी दलीचन्द जी देशाई
बी. ए. एल एल. बी.

गुजराती विवेचनकार—

श्रीयुत वाडीलाल जी मोतीलाल जी शाह।

हिन्दी अनुवादक—

श्रीयुत रिखबचन्द जी मास्टर कुकडेश्वर

प्रकाशक—

कुँवर मोतीलाल रांका ऑनरेरी मैनेजर
श्री जैन सुखसाधन ग्रन्थमाला
व
जैन पुस्तक प्रकाशक कार्य्यालय
ब्यावर जिला अजमेर।

मुद्रक—सत्यव्रत शर्म्मा, शान्ति प्रेस, आगरा।

प्रति १०००   वीर सं० २४४६ सन् १९२०   मूल्य ।-)॥ ७ प्रति १)

विषय सूची ।

❋ प्रार्थना ❋

श्रीजैन पुस्तक प्रकाशक कार्यालय, ब्यावर द्वारा सर्व साधारण में जैन धर्म व जीव दया का प्रचार व सद्विचार की प्रवृत्ति हेतु नाना प्रकारकी पुस्तकें प्रकाशित हुआ करती हैं।

१—इसके लिये जो सज्जन पुस्तक लिखकर या अनुवाद कर कर भेजेंगे उनकी यह संस्था अति कृतज्ञ होगी।

२—पुस्तक का अविनय न हो इस हेतु कुछ न कुछ मूल्य अवश्य रक्खा जावेगा।

३—पुस्तकों की बिक्री का मूल्य पुस्तक प्रकाशन के कार्य्य में ही लगाया जाता है।

४—कार्यालय के सर्व कार्य्यकर्त्ता निस्वार्थ सेवा कर रहे हैं।

५—समाज के विद्वान्, दानवीर, उत्साही, प्रभावना करने वाले इत्यादि सब ही प्रकार के सज्जनों का कार्यालय को प्रत्येक प्रकार की सहायता देने का कर्त्तव्य है।

संस्थापक संरक्षक मुख्य सहायक व सहायकगण।

श्रीयुत	गिरधारीलालजी सांखला बेंगलोर	संस्थापक
,,	भूलचन्द्रजी छजिड जेतारण ...	,,
,,	फूलचन्द्र जी कोठारी ब्यावर ...	मुख्य संरक्षक
,,	विजयराज जी मुना बेंगलोर ...	,,
,,	सिरेमल जी बहोरा, ब्यावर ...	,,
,,	पन्नालाल जी गादया, ब्यावर ...	संरक्षक
,,	गुलाबचन्द् जी घेवरचन्द जी लुणाणी जेतारण	,,
,,	जसराज जी खविसरा, बेंगलोर ...	,,
,,	अचलदास जी लोढा घवरचन्दजी पारख तीवरी	,,
,,	सिरेमल जी बांठया, ब्यावर ...	,,
,,	महावीरसिंह जी हांसी ...	मुख्य सहायक
,,	मिश्रीमल जी मुणोत, ब्यावर ...	,,
,,	मुन्शी केशरीमल जी रांका, ब्यावर ...	,,

निवेदन ।

सुज्ञ पाठकगण इस में जिस ग्रन्थको आपके करकमलों में समर्पण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है यह मूल प्राकृत ग्रन्थ श्री जिनेश्वर सूरि जी कृति का फल स्वरूप है । इस ग्रन्थ की उपयोगिता से मुग्ध होकर "जैन समाचार" तथा जैन हितेच्छु पत्रों के विख्यात सम्पादक वाडीलाल मोतीलाल जी शाह ने गुर्जर भाषा में प्रगट कर अपने ग्राहकों का मुफ्त वितीर्ण की है इसकी उपयोगिता के विषय में हम पाठकगणों का गुजराती प्रस्तावना का हिन्दी भाषान्तर पढ़ने का निवेदन किये बीना नहीं रह सके ऐसी उपयोगी पुस्तक का राष्ट्र भाषा हिन्दी में होना अति आवश्यक समझ कर हमने उक्त शाहजी की आज्ञा से हमारे कार्यालयके ऑनरेरी अनुवादक श्रीयुत रिखबचन्द जी मास्टर कुकड़ेश्वर से राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनुवाद कराकर विज्ञ पाठकोंके सन्मुख रखते हैं हमें आशा है कि हिन्दी भाषा भाषी इस से यथेष्ट लाभ उठावेंगे हम श्रीयुत वाडीलाल जी शाह का कि जिन्होंने गुर्जर भाषा में विवेचन कर प्रकाशित किया, और हमें सहर्ष हिन्दी भाषा में छपवाने की स्वीकृति दी, और ऑनरेरी अनुवादक महाशय का जिन्होंने अपना अमूल्य समय इसके अनुवाद में व्यय किया है अन्तःकरण से धन्यवाद देते हुए उक्त सज्जनों का आभार मानते हैं ।

विनीत

मोतीलाल रांका

ऑनरेरी मैनेजर

श्री जैन पुस्तक प्रकाशक कार्यालय ब्यावर

गुजराती प्रस्तावना का हिन्दी भाषान्तर।

प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक तथा नैतिक उपदेशों की आवश्यकता का स्वीकार करता है और प्रत्येक लेखक भी अपने को ऐसा उपदेश देने योग्य समझ कर थोड़े बहुत पृष्ट रंग ही डालता है। तथापि ऐसे लेखक विरले ही दृष्टिगत होते हैं जो समयानुकूल तथा ऐसी शैली से लिखें कि थोड़ा लिखने से ही बहुत सा भावार्थ समझादें और व्यवहारिक दृष्टि से सूक्ष्म में लिखने वाले तो इने गिने मात्र ही मिलेंगे। "उपदेश रत्न-कोष" के लेखक ने केवल २४ श्लोकों में किस सुन्दरता से व्यवहारिक उपदेश का संग्रह किया है सो इस पुस्तक में उक्त श्लोकों पर किये हुए विवेचन को पढ़ने से आपको भली भांति ज्ञात होगा। विवेचन करते हुए प्रत्येक श्लोक का दूसरे श्लोक से जो सम्बन्ध है सो बताने का प्रयत्न किया है तथापि कितनेही आवश्यकीय शिक्षाप्रद उपदेशों को सविस्तार वर्णन किये हैं।

मूल लेखक यह बात लिखने का साहस करते हैं कि व्यवहारिक नैतिक तथा उच्च प्रकार से जीवन व्यतीत करने के लिये, आवश्यक धर्म ज्ञान सीखने वाले को चाहे वह किसी धर्म का मानने वाला हो या तिरस्कार करने वाला हो आवश्यक है कि एक बार इस एक पुस्तक को अवश्य पढ़ले और यह पढ़लेना उस के लिये काफी होगा। ईश्वर को मानने वालों को तथा नास्तिक को भी इस पुस्तक के व्यवहारिक परन्तु गौरान्वित विचार, उच्चनीतिज्ञ व्यवहार कुशल

कर्त्तव्य परायण, परोपकारी, दैवी जीवन का इच्छुक उत्साही तथा आशावादी जीवन बिताने के लिये प्रेरित करेंगे। विवेचन में जिस प्रकार लिखा है उससे प्रतीत हो जायगा कि धर्मशास्त्र तथा नीति शास्त्र की मार्मिक बातें इस ग्रन्थ में किस प्रकार वर्णन की गई हैं।

ऐसी पुस्तकों की सहस्रों प्रतियां प्रत्येक स्थान में बिना मूल्य वितरण होने से सद्विचार, सत्कार्य, और सच्चारित्र के साथ २ आशावादी जीवन चारों ओर फैलेंगे।

उपदेश रत्न-कोष की २६ गाथाएं मूल प्राकृत भाषा में लिखी हुई हैं कि जिन का संस्कृत अनुवाद तय्यार किया गया है और इस पुस्तक के साथ लगाया गया है। मेरे विद्वान् मित्र श्रीयुत मोहनलाल दुलीचंद देसाई ने मूल ग्रन्थ का गुजराती भाषान्तर कर रक्खा था और उस पर विस्तार से विवेचन करने की आवश्यकता मुझे प्रतीत हुई। इसलिये मैंने यथाशक्ति यह काम उठाया था और कितने ही मित्रोंने इसे प्रसिद्ध करने का आग्रह किया अस्तु अब यह छपाकर जाहिर करता हूँ। यदि पाठक इस में व्यवहार कुशलता, तथा अध्यात्म प्रेम के स्वाद का अनुभव करेंगे तो लेखक अपने परिश्रम को सफल समझेगा।

बम्बई
शरद पूर्णिमा

वाडीलाल मोतीलाल शाह

❋ श्री वीतरागायनम :❋

श्रीमज्जिनेश्वर सूर कृत

मंगल:—

उवएस रयणकोसं नासिअ नीसेस लोग दोगच्चं ।
उवएस रयण मालं वुच्छं नमिऊण वीर जिणं ॥१॥

संस्कृत छाया

उपदेश रत्न कोषं नाशित निःशेष लोक दौर्गत्यं ।
उपदेश रत्नमालम् वक्ष्ये नमस्कृत्य वीर जिनं ॥१॥

अर्थात—जिसने समस्त संसार का दारिद्र्य विनाश किया है। उन वीरजिन प्रभु को प्रणाम कर मैं उपदेश वचनों से बनाई हुई माला अर्थात् इस "उपदेश संग्रह" नामक ग्रन्थ को कहता हूँ।

विवेचन:—सांसारी जीवों को निर्दोष एवम् सुखी जीवन के रहस्य सिखाने के लिये यह उपदेश माला प्रस्तुत की गई है और सब सुख के निधि श्री वीर प्रभु हैं इसलिये आदि में

उन भगवान् को प्रणाम करने का कर्त्तव्य ग्रन्थकर्त्ता ने स्वीकृत किया है। परम सुख अर्थात् आनन्दस्वरूप प्रभु के स्मरण मात्र से ही भक्तों के हृदय में आनन्दोत्पन्न हो यह प्राकृतिक नियम है। इसीनियम के अनुसार सकलश्रेष्ठ गुणालंकृत प्रभु के स्मरण में मनको स्थित करने से मन की चंचल प्रकृतियां दब जाती हैं और ऐसी स्थिति में इस ग्रन्थ के उपदेशरत्न हृदय में बराबर अङ्कित हो जाते हैं।

धर्म का रहस्य क्या है ?

जीव दयाइ रमिज्झइ इंदियवग्गो दमिज्जइ सया वि।
सच्चं चेव चविज्जइ धम्मस्स रहस्स मिण मेव ॥२॥

जीव दयायां रमणीय मिंद्रियवर्गो दमनीयः सदाऽपि।
सत्यमेव च वदनीयं धर्मस्य रहस्य मिद मेव ॥

अर्थ—जीव दया में मग्न रहना, इन्द्रिय का दमन करना, और सत्य बोलना, यही धर्म का रहस्य है।

विवेचन—धर्म का तत्व ज्ञान अत्यन्त गहन और भूल भुलैया सा है। जिससे सामान्य मनुष्य तो दिली इच्छा से धर्म करना प्रारम्भ करने पर भी, गहन और गम्भीर बातें सुनकर, और उन बातों में न समझ सकने से व्याकुल हो जाता है और प्रारम्भ किया हुआ उद्योग त्याग देता है।

उपरोक्त कथन को पूरी तरह समझने वाले इस ग्रन्थ के कर्त्ता धर्म का रहस्य कुछ अंश में और साधारण शब्दों में यों फरमाते हैं कि "दया तथा इन्द्रिय निग्रह और सत्य कथन"

इन तीनों का सेवन करना यही धर्म है। दया अर्थात् हृदय की सुकुमारता–रोगी, मूर्ख, दुखी अथवा अज्ञान प्राणियों की मुश्किलताएं मनमें समझना, वह मुझ से दूर हो सके तो मैं कितना भाग्यवान हूं? ऐसी भावनाएं लाना, और शक्त्यानुसार उस रास्ते पर चलने के लिये श्रम करना, तथा खुद का समय, बल, और द्रव्यादि का व्यय प्रसन्न चित्त से इस लोक और पर लोक के किसी भी बदले की बिन चाह से करना, इन सब तत्वों का दया में समावेश होता है।

इंद्रिय निग्रह अर्थात् इंद्रियों को वश में रखना, बुद्धि पर अंकुश रखना और वह भोग में लिप्त न हो ऐसी सावधानी रखना।

मन, बुद्धि, और आत्मा ये तीनों मिल कर "मानस" बनता है। इन्द्रियां हथियार के समान हैं उन्हें शुभाशुभ काम में प्रवृत्तकर्त्ता मन है, इसलिये मन को अक्ल के वश में रखना चाहिये, और इसी तरह से ही जीवन व्यवहारी मनुष्य इंद्रिय निग्रह पूर्णता से वह सहज ही में कर सकता है। जीभ, नाक, कान, त्वचा, और नेत्र इन पांचों इन्द्रिय का दुरुपयोग न होने देना, इसी का नाम इन्द्रिय निग्रह है। जीभ को स्वाद में भुलाकर, आत्मभाव त्यागना, और असत्य भाषण करना, यही जीभ का दुरुपयोग गिना जाता है। त्वचा को विषयों में लीन होने देना, यही त्वचा का दुरुपयोग है।

कान में बीभत्स या अहित कथन श्रवण होने से विह्वल या क्रोधित होना, यही कान का दुरुपयोग है। नाक से सुगन्धी पदार्थों में लिप्त होना, यही नाक का दुरुपयोग है। मनको इन इन्द्रियों के विषयों में न फँसने देने की दृढ़ बुद्धि रखना,

और ऐसा करने के लिये आत्माभिमुख बनना चाहिये-इन्द्रिय का दमन कुछ इन्द्रियों की निन्दा करने से या कायकूट करने से एवम् पदार्थों से दूर भागने से नहीं होता, परन्तु विषयों का क्षणभंगुर और द्रोही स्वभाव समझने जितनी एवम् आत्मा की पहिचान करने जितनी बुद्धि का प्रसार करने से इन्द्रिय निग्रह सहज ही में हो जाता है। इस तरह दया और इन्द्रिय दमन के तत्व समझ लेने के पश्चात् सत्य कथन के तत्व समझना चाहिये। जिसमें दया और इन्द्रिय दमन के गुण न हों वह भाग्य से ही सत्य कथन कर सक्ता है। कारण सत्य कथन में क्वचित बड़ी कठिनाइयां सहनी पड़ती हैं। सत्य कथन उसका नाम है कि जो सत्य हो (तथ्य-तथारूप हो) सुननेवालेको हितकारी हो (पथ्य हो) एवम् अयोग्य तथा अकटु हो (प्रिय हो)। इस तरह सब जीवों को अपने समान समझ कर सब पर निर्दम्भता से सच्चे दिल से दया भाव रख कर, यथा शक्ति सहायता करना। इन्द्रियों के विषयों में मुग्ध न होते बुद्धि का साम्राज्य जमाकर, आत्माभिमुख रहना, और तथ्य पथ्य एवम् प्रिय न हो ऐसे बैन न कहना यही धर्म का रहस्य है।

धर्म का परमार्थ।

सीलं न हु खंडिज्जइ न संवसिज्जइ समं कुसीलेहिं
गुरु वयणं न खलिज्जइ जइ नज्जइ धम्म परमत्थो ॥

शीलं न हि खंडनीयं न संवसनीयं समं कुशीलैः।
गुरु-वचनं न खलनीयं यतिना ज्ञेयो धर्म परमार्थः ॥

अर्थ—शील वृत को निश्चयात्मक रीति से खंडित नहीं करना, कुशीलाचारी का सहवास त्यागना, तथा उसका संग न करना, और गुरु के वचन का उल्लंघन नहीं करना, इन रीतियों से धर्म का परमार्थ है ऐसा यति को समझना चाहिये।

विवेचन-प्रथम धर्म का रहस्य समझा देने पर अब ग्रन्थ-कर्त्ता ऐसी चाभी अर्थात् युक्ति दिखाते हैं कि जिस रीति पर चलने से यह धर्म पूर्णता से पल सके। धर्मराह को छुड़ाने वाली सबसे बड़ी लालच, विषय, की लालसा है। इसलिये कहते हैं कि "आदि में शील को कलुशित न होने देने पर विशेष ध्यान रखना चहिये।" शील को आबाद रखने वाले इच्छुकों के लिये यह विशेष आवश्यक है, कि वे कुशीलाचारी मनुष्यों से (यथासम्भव) दूर रहें और उनका संसर्ग न हो, ऐसा यत्न करें परन्तु ऐसा करते हुए और कुशीले मनुष्यों से दूर रहने का यत्न जारी रखते हुए भी, एकांत में संयोग होने से शील के खडित होने का संशय बना रहता है। इसी लिये ग्रन्थकार कहते हैं कि "एकांत" आदि कारण मनको विह्वल करने में होशियार न हो जांय, ऐसा चाहते हो तो गुरु के वचन हर समय स्मरण शक्ति के सन्मुख लाते जाओ, क्योंकि सद्गुरु का मंत्र या उपदेश याद आजाने से उसका प्रभाव बुरी लालसाओं को नष्ट कर देता है।

इस तरह धर्म का परमअर्थ समझाया, वह सिर्फ यति अर्थात् साधु के लिये ही है ऐसा न समझो, परन्तु यति अर्थात् इन्द्रिय निग्रह करने की इच्छा रखने वाले प्रत्येक मनुष्य के लिये है।

उपरोक्त रीत्यानुसार हार्दिक इच्छा से शील अर्थात् सच्चारित्रता (जिसमें विषय विरक्तता प्रधान होकर उसके पश्चात् सत्य अस्तेय अहिंसा आदि भी शामिल हैं) धारण कर बाहरी रंग ढंग भी सुघड़, सुशील, दृश्य, सा रखना चाहिये कि जिससे किसीको कुछ भी शंका होने का कारण भी प्राप्त न हो सके। इसके लिये ग्रन्थकार कहते हैं कि:—

ज्ञानी का निन्दक भी कुछ नहीं कर सकता।

चवलं न चंक मिज्जइ विरइज्जइ नेव उब्भड़ो वेसे
वंकं न पलो इज्जइ रुट्ठा वि भणंति किं पिसुणा ४

चपलं न चंक्रमणीयं धारणीयो नैवोद्‌भटो वेषः।
वक्रं नावलोकनीयं रुष्टा अपि किं भणन्ति पिशुनाः

अर्थ—चपलता से न चलना, उद्‌भट भेष सवर्था नहीं रखना, और वंक दृष्टि से नहीं देखना, इन गुणों के धारक को फिर निन्दक दुष्ट रुष्ट चिड़े हुए अर्थात् क्रोधित होने पर भी क्या कह सक्ते हैं ? कुछ भी नहीं।

विवेचन—धर्मशील मनुष्य को बाह्य व्यवहार भी, विवेकता से चलाना चाहिये। उसको लटक, मटक, सी चाल न चलना चाहिये। बहेरूपिया या छैल छुटाऊ के समान या अपनी स्थिति को न शोभे, ऐसी पोशाक नहीं पहिनना चाहिये। तथा तिर्छी दृष्टि से बुरे भावों से इधर उधर भी नहीं देखना चाहिये। इस रीति से विवेक रखने पर किसी को यह बदचलन है। ऐसा संशय लाने का कारण भी नहीं

मिल सकेगा, और चुगली खाने वाले, तथा निन्दा करने वालों को, ऊपर कहे हुए मनुष्य की निन्दा करने का बहाना भी न मिल सकेगा।

कलिकाल का भी कुछ नहीं चल सकता ॥

नियमिज्जइ नियजीहा अविआरिअं नेव किज्जएकज्जं
न कुलकम्मो अ लुप्पई कुविओ किं कुणइ कलिकालो५।

नियमनीया निजजीहा अविचारितं नैव करणीयकृत्यं।
न कुल क्रमश्च लोपनीयः कुपितः किं करोति कलि कालः॥

अर्थ—अपनी जीभ को वश में रखिये, कभी भी बिना सोचे समझे काम न करिये, और कुलाचार को न लोपिये तो साक्षात् कोपायमान कलि भी क्या कर सक्ता है? कुछ नहीं।

विवेचन—जो असत्य निन्दारूप, क्लेश वर्द्धक, तथा निरर्थक, वचन न बोलते, मितभाषी होने की हार्दिक इच्छा जगे, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, सम्बन्धी विचार किये बिना कोई कृत्य न करने की ध्यान में रहे, और बिना किसी बड़े परोपकार के कुलाचार न लोपने की सावधानी रहे तो कितनी भी कड़ी शत्रुता वाला वैरी दुःख न दे सके, क्योंकि जो निश्चय और व्यवहार से पवित्र हैं उन पुरुषों के शत्रु भी मित्र बन जाते हैं।

सज्जन की राह।

मम्मं न उलविज्जइ कस्स वि आलं न दिज्जइ कयावि
को वि न उक्को सिज्जइ सज्जण मग्गो इमो दुग्गो॥६

मर्म न च लपनीयं कस्याप्पालं न देयं कदापि।
कोऽपि नोत्क्रोशनीयः सज्जन मार्गोऽयं दुर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ—किसी को मर्म वचन न कहो, किसी पर कदापि आल-कलङ्क मत लगाओ, और किसी पर आक्रोश-क्रोध मत करो, यह दुर्ग के समान ही सज्जन का मार्ग है।

विवेचन—जिस तरह दृढ़ गढ़ में (किल्ले) पूर्ण रक्षित योद्धाओं को दुश्मन कष्ट नहीं पहुंचा सकता, उसी तरह वचन गुप्ति अर्थात् वचन सम्बन्धी होशियारी रूप किल्ले के आश्रयवालों को कोई मनुष्य हानि नहीं पहुंचा सकता। वचन गुप्ति के तीन भेद इस श्लोक में बतलाये हैं (१) मर्म वचन मत बोलो (२) किसी पर कलंक न मढ़ो (३) क्रोधयुक्त वैन न कहो। इन तीनों रीतियों का ज्ञान करने की इच्छा रखनेवाले मनुष्य मन पर बुद्धि का अवश्य अंकुश रक्खें।

विद्वानों का उपदेश इस तरह है।

सवस्स उवय रिज्जइ न पम्ह सिज्जइ परस्स उवयोरा
विहलं अवलं विज्जइ उवाएसो एस विउसाणं ॥७॥

सर्वस्योप करणीयो न विसारणीयः परस्योपकार।
विह्वलोऽअवलंबनीयः उपदेश एष विदुषाम् ॥७॥

अर्थ—सब पर उपकार करो, दूसरों के किये हुए उपकार को न भूलो, और विह्वल-दुःखी को अवलम्बन देओ, यही विद्वानों का उपदेश-बोध है।

विवेचन—सच्ची विद्या—परम शास्त्रों के अनुभवी सब शास्त्रों का सार ग्रहण करके कुछ अंश में बतलाते हैं कि मित्र या शत्रु, स्वदेशी या परदेशी, स्वधर्मी या परधर्मी, इस भेद को क्षण भर के लिये एक ओर रखकर कहीं भी कोई मनुष्य दुःखी नज़र आवे तो, वहां सिर्फ दया बुद्धि से उपकार करने में तत्पर रहो और किसी का उपकार हुआ हो तो उसे मत भूलो, बल्कि एक उपकार का बदला कई वक्त नाना प्रकार से चुकाओ। मन से विह्वल हुआ और हिताहित, कर्त्तव्याकर्त्तव्य, सत्यासत्य समझने में अशक्त बना हुआ मनुष्य दृष्टिगोचर हो, तो उसे धीरज बंधाकर, उपदेश देकर, मार्ग सुझाकर, या उसे शान्ति मिल सके, ऐसे साधन उपस्थित कर, अवलम्बन देओ, कि जिससे उसकी मानसिक व्यथा (व्याधी) दूर होकर वह सत्यासत्य, हिताहित और कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान कर सके, इस तरह परोपकार, कृतज्ञता, और मानसिक व्याधिसे दुःखित मनुष्यको आश्रय, ये तीन शिक्षा वचन सब शास्त्रों के मथन का सार है।

प्रभुता-बड़प्पन किस रीति से मिलता है ?

कोवि न अब्भत्थिज्जइ किज्जइ कस्स वि न पत्थणा भंगो
दीणं न य जंपिज्जइ जीविज्जइ जाव जीअ लोए ॥८॥
अप्पा न पसं सिज्जइ निंदिज्जइ दुज्जणो वि न कयावि
बहु बहु सो न हसिज्जइ लब्भइ गुरु अत्तण तेण॥९॥

कोऽपि नाभ्यर्थनीयः कार्यो न कस्यापि प्रार्थना भंगः।
दीनं नच जल्पनीयं जीव्यं यावज्जीवलोके ॥

आत्मा न प्रशंसनीयो निंदनीयो दुर्जनोऽपि न कदापि।
बहु बहु सो न हसनीयं लभ्यते गौरवं तेन ॥

अर्थ--जब तक जीवलोक में जीवित रहो, तब तक किसी की अभ्यर्थना-प्रार्थना मत करो। उसी तरह किसी की प्रार्थना का भंग भी न करो, किसी से दीन वचन मत कहो, कदापि आत्मा की-अपनी प्रशंसा मत करो, दुर्जन की निंदा न करो, और बहुत वक्त मत हंसो। इतने गुण धारण करने से गुरुत्व (बड़प्पन) मिलता है।

विवेचन-मृत्यु समय तक क्या करने और क्या न करने से प्रभुता-बड़प्पन मिलता है, इसे समझाने के लिये ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि, अपने लिये किसी से कुछ मांगकर, उसकी दया की जांच मत करो, और (बहादुर मनुष्य सदैव उदार वृत्तिरखनेवाले रहते हैं) दूसरों की मांग का बने वहां तक अस्वीकार मत करो, तथा कितना ही कठिन दुःख क्यों न पड़े, तो भी किसी से दीन वैन मत कहो। (भिक्षा निर्वाही मनुष्यों के समान रोना धोना नहीं, तथा किसी की खुशामद भी मत करो) अपने मुंह से अपनी कीर्ति गाने से हीनता प्रतीत होती है। इसलिये सिर्फ कर्तव्य समझ कर अपने काम को पूर्ण करने में ही संतोष मानना (परन्तु किये हुए काम का या अपनी किसी भी शक्ति का अपने मुंह से यशोगान मत करो) ये ४ नियम पालने से सच्चा बड़प्पन प्राप्त हो सकता है। इन चार नियमों के उपरान्त और भी दो नियम उपयोगी समझकर कहते हैं कि दुर्जन की निंदा मत करो (कारण अगर उसका दोष भी हुआ, तो उसे प्रगट

करने से वह मनुष्य शत्रु बन जाता है और वह स्वभाव से ही दुष्ट होने से वैर का बदला लेने की इच्छा से उस पवित्र मनुष्य को इधर उधर बुरे ढङ्ग से नीचता दिखाता फिरता है) और बारबार मत हंसो (कारण ज्यादा हंसी भी चंचलता का चिन्ह है और अपमान क्लेश और लघुता का उत्पादक है)।

विशेष विवेचन--यह उपदेश साधारण रीति से दिया गया है, प्रत्येक मनुष्य को इस नियम को पालने का दुराग्रह हर समय करना नहीं। यहां तो सामान्य रीति से कहा है कि "दुष्ट मनुष्य बड़े खटपटी होते हैं।" इसलिये किसी भी कार्य में बने वहां तक उनका नाम न लेना। उनकी कौनसी ही बात चाहे सच्ची ही हो, तो भी जिससे उनकी पोल खुले, किसी से कहना नहीं, और उनके समक्ष में भी हितबुद्धि से कुछ कहना नहीं, क्योंकि वे लोग चिड़कर उसके प्रतिकूल हितबुद्धि वाले को नीचा दिखाने की कोशिश करेंगे। इसके सिवाय दुष्टों को जो हित सलाह देनेवाला मनुष्य, है वह दृढ़ दिल का, साहसी, और आत्म शांति वाला होकर दुष्ट को धमका सके, इतनी सामर्थ नहीं रखता है। इसलिये इस नियम की साधारण श्रेणी में गिन्ती हुई है। परतु मंडल, ज्ञाति, धर्म, देश आदि के अग्रेसर बन कर जो काम बजा रहे हैं उनको तो दुष्टों का तनिक भी भय नहीं रखना चाहिये। चाहे वे हमारी प्रभुता रखें, चाहे हमारा निरादर करें, इस बात का तनिक भी स्वार्थी विचार एवम् डर नहीं रखना चाहिये। उन्हों को तो, अपने मंडल, ज्ञाति, धर्म या देश आदि जो समाज का हित उनके सिर पर रख दिया है

उस समाज के रक्षण या उन्नति में बाधा उपस्थित करने वाले दुष्टों को, मौके से अवश्य निंदित करना, और उन्हें सीधे कर आगे बढ़ते जाना चाहिये।

न्याय का क्या मार्ग है ?

रिउणो न वीससिज्जइ कयावि वंचिज्जए न वीसत्थो
न कयग्घेहिं हविज्जइ एसो नायस्स नीसंदो ॥ १० ॥

रिपवो न विश्वसनीयाः कदापि वञ्चनीयो न विश्वसितः
न कृतघ्नेन भाव्यं एष न्यायस्य निः स्यन्दः ॥

अर्थः—रिपु-शत्रु का विश्वास नहीं करना विश्वासी को चिड़ाना नहीं, और कृतघ्न अर्थात् गुण चोर अथवा नमक हराम बनना नहीं, यही न्याय का मार्ग है।

विवेचन—इस श्लोक में साधारण न्याय सिद्ध किया है। सब जन समूह को एक दूसरे से मिलाने वाला तत्व विश्वास है। इसलिये इस शृंखला के रक्षार्थ कितनी विवेकता रखनी चाहिये, इसी सम्बन्ध का न्याय यहां बतलाया है। जिसके ३ भेद किये हैं (१) जो उपरोक्त शृंखला को जिससे एक दूसरे का सम्बन्ध दृढ़ होता है, उस पवित्र विश्वास की शृंखला को न पहचानते हों अगर पहिचान कर भी स्वार्थान्ध बन कर तोड़ते हों, अर्थात् कि जो एक मनुष्य की ओर से दूसरे मनुष्य की ओर भाई चारे का फर्ज भूलकर उन्हें मन, वचन या कार्य से दुःख देने में ही आनन्द मानते हों, उनका अर्थात् शत्रुता रखने वाले का

विश्वास नहीं करना, उनसे डर कर व्यवहार करना, उन्हें गुप्त हाल नहीं कहना, एकांत में उनका सहवास त्यागना, और उनके वचनों पर श्रद्धा रखकर किसी कार्य को नहीं करना (२) एक मनुष्य भाई की तरह या जाति भाई, देश भाई, स्वधर्मी भाई या सहाध्यायी की तरह किसी भी प्रकार का सम्बन्ध सांकल पर भरोसा कर कोई खानगी बात कहे, या उसकी प्रभुता की कोई चीज़ अपने विश्वास पर रक्खे, या वह अपने बालक या स्त्री को अपने सहारे छोड़ जावे, तो जिस विश्वास से उसने काम किया है। उस विश्वास को याद रखना, किसी भी दिन वह गुप्त बात किसी से कहना नहीं, या उसका दूसरे प्रकार से बुरा लाभ उठाना नहीं। उसी तरह उस की चीज़ दिखा देना नहीं, या बिगाड़ना नहीं, बालक, या स्त्री वर्ग की आरोग्यता, व चारित्र को, तकलीफ पहुँचाना नहीं, और बने वहां तक अन्य व्यक्ति को भी दुःख पहुंचाने देना नहीं, इस की सावधानी रखना, अगर इस चतुराई में किसी प्रकार से त्रुटि रही, तो विश्वास भंग में ही गिनती हो जाती है, और विश्वासघात यह बड़े से बड़ा आत्मघाती पाप है। (३) किसी ने अपने पर कोई उपकार किया हो, तो वह याद रखकर मौक़ा आने से उसका बहुत उत्तम रीति से बदला चुकाना। पृथ्वी दीखने में जड़ है, परन्तु उस में १ दाना डालने से वह सहस्र दाने पीछे दे देती है। इसी न्यायानुसार बुद्धिमान मनुष्य चाहे कितना ही छोटा उपकार क्यों न हो, उस के बदले बड़ा बदला क्यों न दे? जो इसके प्रतिकूल गुण चोर बनते हैं, और उपकार के बदले निन्दा या दूसरे प्रकार से हानि पहुँचाने में तत्पर रहते हैं वे सब

पापियों से भी बड़े पापी हैं। ऐसे मनुष्यों का वजन पृथ्वी को समुद्र और पहाड़ों के वजन से भी ज्यादा लगता है। जन समाज में कचरे के समान हैं ऐसे मनुष्यों के लक्षण कभी सीखना नहीं परन्तु उलटा कृतघ्नता का बदला कृतज्ञता से ही देना सीखना चाहिये।

चतुर मनुष्यों के लक्षण।

राच्चिज्जइ सुगणेसु वज्झइ राओ न नेह वज्जेसु।
किज्जइ पत्तपरिक्खा दक्खाण इमो अ कस वट्टो ११

राचनीयं सुगुणेसु वध्यो रागो न स्नेह वर्जितेषु।
कार्या पात्र परीक्षा दक्षाणामयं च कष पट्ट ॥११॥

अर्थ—शुभ गुणों से प्रसन्न रहना। स्नेह रहित अर्थात् सच्चे प्रेमी न हों ऐसे मनुष्यों से स्नेह न करना, और पात्र की जांच करना यही दक्ष मनुष्यों की कसौटी है।

विवेचन—दक्ष अर्थात् सत्यासत्य, हिताहित, कर्तव्या कर्तव्य का ज्ञान रखने वाले मनुष्यों के तीन संकेत यहां बतलाये हैं (१) शुभ गुण चाहे मित्र में या मुसाफिर में, या शत्रु में भी दृष्टिगत हों, तो प्रमोद भावना लाकर प्रसन्नता के पात्र बनो, गुणों के सदैव प्रशंसक रहो। गुणों की तरफ प्रमोदता, लेनेसे परिणाम यह होता है कि उन गुणों का सम्बन्ध अपने से जुड़ जाता है। और वे अपने में भी पैठ जाते हैं। जिस समय कृष्ण महाराज ने कुत्ते की दांत की सुन्दरता सराही थी उस समय दूसरों ने तो उस मुर्दे में से

निकलती हुई दुर्गंध से सिर फट जाता है यही अनुभव किया था। इसतरह अवगुणों पर दृष्टि न डालते गुणों को ढूंढ कर उनके ही ग्राहक बना यह काम सचमुच में दक्ष-विवेकी पुरुषों से ही बन सक्ता है। नीर-क्षीर को भिन्न २ कर क्षीर का स्वाद तो हंस ही लेसक्ता है, इसलिये हंसपना, विवेक उत्तमता, पहिचानने की और ग्रहण करने की शक्ति यही सच्ची दक्षता (Wisdom) है. (२) जो मनुष्य या स्त्री निः-स्वार्थ प्रेम न रखते हों तो उन से बने वहां तक अपने मन को दूर रक्खो। ऐसे स्त्री पुरुषों की मैत्री निरर्थक ही नहीं परन्तु हानिकारक भी है। जो धन, प्रभुता, या रूप देखकर दौड़ आते हैं और स्नेह बतलाते हैं उन्हें सच्चे प्रेमी मत समझो। वे निःस्वार्थी स्नेह के अनुभवी नहीं वे आन्तरिक प्रेम के अभि-लाषी नहीं हैं। इसलिये उनसे किया हुआ सम्बन्ध अपने को आर्थिक या आत्मिक कुछ भी फायदा नहीं पहुँचा सक्ता, और उलटा वह सम्बन्ध अपने समय, बल, धन प्रभृति का भोगी बनता है और भार से दबाकर कठिनाई में पहुँचा देता है (३) मित्रता, लग्न, उपदेश, व्यापारिक सम्बन्ध इत्यादि प्रत्येक महत्व के कार्य्यारम्भ में यह खूब छानकर देखना चाहिये, कि वह मनुष्य कितनी योग्यता का है पात्र, अपात्र और कुपात्र ऐसे तीन जाति के मनुष्यों में से कुपात्र से तो (सामान्य मनुष्यों से तो) नवगज लम्बा नमस्कार ही करो, अपात्र से (सिर्फ उसपर उपकार बुद्धिसे) कुछ ही सम्बन्ध रक्खो, और पात्र से सम्पूर्ण प्रेम जोड़ो। उपदेश देते समय इस बातको पहिले ढूंढो कि श्रोता कैसी स्थिति का, कैसी योग्यता वाला, कितने ज्ञान वालाहै, और सत्यके अनेक स्वरूपोंमें कि सस्वरूपका, किस पोशाकका उपदेश देना इसे विशेष आवश्यकहै? लग्न करने के

प्रारम्भ में शरीर, नीति, टेवा प्रभति सम्बन्ध में वर (कन्या) कितनी पात्रता रखता है, यह देख कर लग्न करना चाहिये। इस रीति से प्रत्येक काम पात्र की परीक्षा करके ही प्रारम्भ करना चाहिये।

क्या करने से दुसरे अपना नाम नहीं ले सके ?

नाकज मायरिज्जइ अप्पा पाडिज्जइ ने वयणिज्जे।
नय साहसं चइज्जइ उब्भिज्जइ तेण जग हत्थो१२॥

ना कार्य माचरणीय मात्मा पातनीयो न वचनीये।
न च साहसं त्यजनीय उत्थानी यस्तेन जगद्धस्तः॥१२।

अर्थ—अकार्य को न आचरो न करो, आत्मा को निन्द- नीय प्रवृति में मत पड़ने दो, और असाहसी बनकर बिना विचारे काम मत करो, जिस से जगत में अपनी भुजा लम्बी कर सकें अर्थात् संसार से निडर रह सकें और अपना नाम कोई भी न ले सके (निन्दा न कर सकें)।

विवेचन—किस का मन शांत, निडर, उद्वेग रहित हो सकता है ? इस के उत्तर में ग्रन्थकर्त्ता समझाते हैं, कि जो मनुष्य न करने सरीखे कामों से अलग रहता हो, जिस काम से आत्मा ठगीजाय अर्थात् आत्मभाव के बदले अचेतन भाव दृढ़ हुए, ऐसे कामों में आत्मा को न होमता हो, और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सम्बन्धी चारों तरफ का विचार किये बिना कोई काम प्रारम्भ न करता हो, ऐसा मनुष्य ही निडर, उद्वेग, रहित, होकर शांतता से जीवन व्यतीत कर

सकता है और ऐसी मनःशान्ति से ही वह मनुष्य साहसी दृष्टिगत होता है और लोग उसका नाम नहीं देसक्के। अमुक काम करने योग्य है या नहीं? उस काम का परिणाम क्या होने की आशा रक्खें! वह काम यशोगान में किसी भी तरह कलंक तो नहीं लगावेगा? वह काम करने से आत्मा की ठगाई तो नहीं होती है? वह काम करने में अवश्य विघ्न आवेंगे ऐसा प्रारम्भ में मानकर उन विघ्नों के सामने ठहरे रहने के साधन तू समझ कर संग्रह कर सका है? ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तर अपने मन से लेकर बाद में कोई काम प्रारम्भ करने से मनुष्य बहुत करके तो अवश्य फतह पाता है और क्वचित अंश में निष्फलता प्राप्त हो तो भी वह काम सम्पूर्णता से भविष्य की होशियारी से और आत्मा की ठगाई न हो इस उद्देश से किया गया होने से मन को हाय २ नहीं होती वह आत्म् सन्तुष्ट बना रहेगा। इससे रस्ते चलते किसी से बात करते या कोई भी काम करते समय उसे ना-हिम्मत या चिंताग्रस्त न देख सकोगे, परन्तु एक पहलवान के सदृश वह प्रामाणिक और दृढ़ता धारण किया हुआ दृष्टि-गत होगा और उसके भाषण में मिठास दृढ़ता, और फुर्ती मालूम होगी। सामान्य मनुष्यों की सामर्थ्य नहीं कि वे उप-रोक्त ख्याति में के एक मनुष्य के साथ जो किसी कार्य में निष्फल होने से दिखने में निर्धन होगया हो तो भी उसके साथ चूं या चां कर सके।

विचार पूर्वक और आत्मा की ठगाई न हो इस रीति से काम करने वाला मनुष्य शनैः २ ऐसी दृढ़ हिम्मत वाला, दृढ़ दिलवाला, हँस मुखी, चंचल और उदार दिल वाला बनता

है कि फिर पराजय, निर्धनता अपमान आदि संयोग उसे दुख नहीं पहुंचा सके।

असि धारा व्रत।

वसणे वि न मुज्झिज्जइ मुच्चइ माणो न नाम मरणे वि
विहवक्खए वि दिज्जइ वयमसि धारं खु धीराणं१३

व्यसनेऽपि न मोहनीयं मोच्यं मानं न मरणेऽपि।
विभव क्षयेऽपि देयं व्रत मसि धारं खलु धीराणाम् ॥ १३

अर्थः—व्यसन (दुख में) न घबराना मृत्यु हो तो भी धर्म का बहुमान कभी नहीं त्यागना, और वैभव का नाश होजाय, तो भी दान देते रहना, यह सचमुच में धैर्यवान पुरुषों का असिधारा व्रत अर्थात् तलवार की धार पर चलने के समान व्रत है।

विवेचन—बारहवीं गाथा में कहे हुए नियमों वाला मनुष्य धीर कहलाता है।'धीर' शब्द धी अर्थात् अलग रहना इस धातु से बना है। जिससे धीर का आत्मभाव से अलग रहके कार्यकर्ता पुरुष यह अर्थ होता है। आत्मा का स्वभाव अमरत्व, ज्ञान, और आनन्द है। जिससे धैर्यवान पुरुष सदैव प्रत्येक कार्य करते समय विचार करें कि इस कार्य से अगर तात्कालिक लाभ न होगा, तो भी उसकी चिंता नहीं, कारण कि एक वर्ष या एक ही जीवन से मेरा अस्तित्व नहीं मिटेगा और अन्त में बहुत समय पश्चात् भी फायदा ही होगा, इसलिये यह काम निश्चिन्तता से और आनन्द से तथा ज्ञान

पूर्वक और विचारपूर्वक करते रहना, ऐसा मनुष्य इस गाथा के कथनानुसार दुख के समय भी व्याकुल नहीं होता, मृत्यु होने तक का अवसर प्राप्त हो, तो भी आत्मा की उच्च मान्यता धर्म भावना में त्रुटि नहीं पड़ने देता, और वैभव का नाश होजाय, तो भी उदारता को तिलांजली नहीं देता (यथाशक्ति छोटी रकम भी दान किये सिवाय नहीं रहता और कुछ भी न हो सके तो काया से या मन की भावना द्वारा किसी की भलाई करने की प्रकृति तो अवश्य रखता है) ऐसे धैर्यवान पुरुषों का व्यवहार उनकी आदत ही वैसी होने से स्वभाविक सा हो जाता है। परन्तु दूसरों के लिये तो ऐसा मन अर्थात् आत्मस्वभाव न पहिचानने वाले मनुष्यों को तो यह व्रत तलवार की धार पर चलने के समान कठिन मालूम होता है।

दुख को किस तरह छोड़ सकें ?

अइनेहो वहिज्जइ रूसिज्जइ नय पिये वि पय दिहं।
वड्ढारिज्जइ न कली जलंजली दिज्जइ दुहाणं॥१४॥

अतिस्नेहो न वहनीयो रोषणीयं नच प्रियेऽपि प्रति दिवसम्
वर्द्धनीयो न कलिः जलांजलिर्देयो दुःखानाम् ॥१४॥

अर्थ—अति स्नेह में नहीं रमना-धारण नहीं करना, प्रति-दिन-निरन्तर प्रिय मनुष्य पर भी क्रोध नहीं करना, और कलि-कलेश-लड़ाई बढ़ाना नहीं, इन तीन रीतियों से दुख को जलांजली दे सके हैं। अर्थात् इन चीज़ों का संचय करने से दुःख का अंत कर सके हैं।

विवेचन—सुख और दुःख ये कोई वस्तु नहीं है। इन्हें स्व-तन्त्र हक नहीं। मनकी अमुक दशा जिसका नाम सुख माना गया है और उससे भिन्न दूसरे प्रकार की दशा को दुःख कहते हैं। अमुक पदार्थ और अमुक मनुष्यों पर विशेष स्नेह रखने वाला मनुष्य उन पदार्थ या उन मनुष्यों के वियोग से या उन्हें हानि होने से उनपर विशेष स्नेह के कारण दुःखी बनता है। जो अपना मूल स्वरूप स्वभाव समझने की इच्छा की हो तो कोई प्राणी या पदार्थ ऊपर गाढ़ मूढ़ स्नेह राग बांधने की भूल कभी न हो और न दुख का अनुभव करना पड़े। निर्मल प्रेम-प्रेमपात्र का हित करने की बुद्धि से किया हुआ प्रेम-मोह रहित प्रेम कभी दुःखी नहीं करता इसलिये मोह दशा स्वार्थी स्नेह या विकारी राग के बदले शुद्ध निर्मल प्रेम भाव के भक्त बनना कि जिससे सदा आनन्द में निज स्व-रूप में ही रहना पड़े (२) मित्र पत्नी भाई आदि स्नेही जन चाहे जैसे सहनशील या भले हों तो भी उनपर बारम्बार क्रोध करने से उन पर किये हुए उपकार अवश्य वे भूल जा-यँगे। कोई भी मनुष्य चिड़चिड़ापन, तिरस्कार, क्रोधमय वचन, और बारम्बार होते हुए रुदन सहन करने को बंधा हुआ नहीं है किसी को ये बातें पसन्द नहीं हैं। इसलिये विवेक और सभ्यता सहनशीलता और स्मित आनन ये गुण सिर्फ घर बाहर ही दिखाने के लिये धारण करने के नहीं हैं। परन्तु घर में भी पास के स्नेहियों से यही व्यवहार रखना चाहिये कि जिससे अपने सिर किसी के दुःख का क्लेश का निराशा का कारण न मढ़ सके। हमेशा यह याद रखना चाहिये, कि सभ्यता के साधारण से दिखने वाले सामान्य नियमों का उलंघन अत्यंत समीप के स्नेहियों को भी बहुत

समय तक नहीं सहन होसका, और अन्त में दोनों पक्षों को बहुत पश्चात्ताप करना पड़ता है (३) दुःख से दूर रहने वाले इच्छुकों को उपरोक्त सम्बन्धी सावधानी रखने के साथ ही एक और बहुत ही अच्छी हित सलाह यह याद रखना चाहिये कि किसी से लड़ाई भी हुई हो तो भली भावनाएं, मीठे शब्द और अपकार के विरुद्ध, उपकार के कृत्य रूपी शीतल जल के छींटे डालना चाहिये, परन्तु निंदा, अशुभ भावना, श्राप और उस पक्ष का नुकसान हो, ऐसे काम रूपी ईंधन न होमना चाहिये। द्वेष, द्वेष से नहीं परन्तु प्रेम से दूर होसक्ता है, जो ऐसा मानता है कि मेरे शत्रु हैं वे शान्ति नहीं पासक्ते।

निन्दा न हो ऐसे उपाय।

न कुसंगेण वसिज्जइ बालस्स वि घिप्पए हिअं वयणं
अनयाओ निवट्टिज्जइ न होइ वयणिज्जया एवं ॥१५

न कुसंगेण वसनीयं बालस्यापि ग्राह्यं हितं वचनम्।
अनयतो निवर्तनीयं न भवति वचनीयता एवम् ॥ १५॥

अर्थ–कुसंगति वाले के साथ नहीं रहना, बालक के भी हितकारी वचन हों तो ग्रहण करना और अन्याय से निवृत रहना दूर रहना तो वचनीयता अर्थात् निंदा कभी नहीं हो सक्ती।

विवेचन—सामान्य रीति से कोई भी मनुष्य की निंदा होने के मुख्य तीन कारण हैं (१) तुच्छ इज्जत वालों का सहवास करना कि जिससे उत्तम पुरुषों के लिये भी लोगों को संदेह आये बिना नहीं रहता। (२) मैं ही दक्ष हूं ऐसा दुराग्रह अथवा

अहंकार कि जिससे किसी की हित सलाह नहीं सुनें और अन्त में लोकों में तिरस्कार हो। (३) न्याय विरुद्ध व्यवहार करने से या अन्यायोपार्जित द्रव्य लेने से या मिथ्या पक्ष खैंचने से लोगों में निन्दा होती है।

इन तीन ही कारणों को दूर करदें तो जन समाज में निंदा होने का सम्भव ही न रहे (१) नीच मनुष्यों के साथ व्यवहार करना और किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये(२) खोपरी २ की मति भिन्न २ होती है ऐसा समझ कर छोटे बड़े सब की बात सुनना चाहिये, और उनपर खूब मनन कर अंत में अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सम्बन्धी विचार कर योग्य जंचे वैसा करना चाहिये (३) अन्याय करने की या किसी का झूठा पक्ष लेने की बात छोड़ देना चाहिये, क्योंकि अन्याय से उपार्जित द्रव्य शत्रु के दूत सदृश अपने घर में पैठ संचित की हुई दौलत को भी साथ लेकर भग जाता है। ये कथन कई मनुष्यों के अनुभव सिद्ध है न्याय से थोड़ा पैदा हो तो कम खर्च करना, साधारण जीवन बीताना, भोगोपभोग में बने वहां तक कम से कम पदार्थों में संतोष मानना और आनन्द से जीवन व्यवहार चलाना, यह सबसे श्रेष्ठ है। परंतु अन्याय से पैसा पैदा कर उनसे खर्च और शौक बढ़ाकर इन्द्रियों के दास बनजाना, यह तो भयंकर आत्मघात है। सच्चे इरादे के साथ झूठा पक्ष खैंचनेसे हृदय मलीन होता है, बुद्धि भ्रष्ट होती है और बारम्बार पैसा होने के कारण अंत में जीवन पापी और दुःखी बनजाता है।

क्या करने से सचमुच में सन्ताप नहीं होसका?

विहवेवि न मच्चिज्जइ न विसीइज्जइ असंपयाए वि ।
वट्टिज्जइ सम भावे न होइ रणरणइ संतावो ॥१६॥

विभवेऽपि न राचनीयं न विषादनीयम संपदापि ।
वर्तनीयं समभावे न भवति रत्य रत्योः संतापः ॥१६॥

अर्थ—वैभव में लीन नहीं होना, गर्व नहीं करना, सम्पत्ति रहित समय में विषाद-खेद नहीं करना और सम भाव से अर्थात् संतोष में रहना, तो सचमुच में ऐसे संयोग से कभी दुःख नहीं होता ।

विवेचन—इस गाथा में अध्यात्म का रहस्य बिलकुल साधारण शब्दों में समझाया है । मनुष्य जिसे दुःख कहते हैं वह दो प्रकार का है । एक प्रकार का दुःख मन को नापसन्द संयोग के होने से दुःख के रूप में नजर आता है और दूसरे प्रकार का दुःख मन पसंद संयोग मिलने से होती हुई हर्षेच्छा और अभिमान के रूप में उत्पन्न होता है । इस सम्बन्ध में गहन विचार करने से यह बात समझ में बैठ जायगी कि दुःख यह कोई चीज़ नहीं । परंतु अच्छे या बुरे कहलाते दृश्यों में रहते समय मानसिक भूल अथवा भ्रम समझ यही दुःख है, और ऐसा दुःख सिर्फ सम्पत्ति रहित दशा में ही उत्पन्न होता है । ऐसा कुछ नहीं परंतु सम्पत्ति वाली दशा में भी दुःख उत्पन्न करता है कारण कि दुःख यह कोई चीज़ नहीं परन्तु मानसिक भूल का अपर नाम है । इसलिये इस शास्त्रकार की सलाहानुसार जो अपने

को मानसिक भूल से अलग रहना है तो ऊपर कही हुई दो में से एक भी स्थिति में दुःख पैदा न हो सकेगा। वह सलाह क्या है ? वह एक ही शब्द की सलाह है कि 'समता' अर्थात् सम भाव रक्खो Equilli brium of mind अर्थात् मनकी समान वृत्ति स्थिर रक्खो। मनुष्य, यह प्रतिक्षण मोक्ष के उच्च २ शृंगों पर चढ़ने वाला आत्मा है, इसलिये वह १ तरफ गिर न पड़े ऐसी समता धारण कर आगे २ बढ़ते जाना चाहिये। दुनियाँ जिसे सम्पत्ति कहती है उसे देखकर उस की तालियां पीटना या नृत्य करना योग्य नहीं (कारण ऐसा करने संतोष का नाश होता है और घबराकर नीचे गिर पड़नेसे हाड़ २ चकनाचूर होजाते हैं) उसी तरह दुनियां, जिसे निर्धनता या रङ्क दशा कहती है, वह देखकर पेट कूटना या चिल्लाकर रोना योग्य नहीं। (कारण कि इसमे भी समता स्थिर नहीं रह सकी) जिस तरह १ ट्रेन दो पट्टियों पर सरलता से चली जाती है और समीप के खड्डे या पहाड़ी, सुन्दर या खराब दृश्य देखने की आवश्यकता भी नहीं रखती, उसी तरह मनुष्य को सामान्य बुद्धि Common sense और नीति के पट्टियों पर सफाई से चलते रहना, और श्रीमंतता या निर्धनता तो सिर्फ अपने बाहरी राह पर के दृश्य हैं ऐसा समझ कर उन स्थितियों का प्रभाव अपने ऊपर न होने देना चाहिये। सादी भाषा में कहिये, तो श्रीमंतता के समय गर्व नामक नशा पीना नहीं और निर्धनता के समय खेद नामका विषपान करना नहीं। इस दुनियां में अपने जन्म लेनेका मुख्य प्रयोजन सिर्फ उपरोक्त उच्च २ शृंगों पर चढ़ने का है, अगर यह प्रयोजन बिलकुल मन में ठसाने की कोशिश की तो उन पहाड़ियों की

लहज़त अथवा आनन्द या अकथ्य शक्ति का ख्याल मनमें रहने के फलसे उस रास्ते पर चलते हुए जो दुनियां के अच्छे और बुरे दृश्य, सम्पत्ति या विपत्ति अनुभव में आवेंगी तो भी वे अपने दिल पर कुछ असर नहीं कर सकीं। जिसका मन एकही लक्ष पर लगा हुआ है उस मनुष्य को घमंड और दुःख नहीं होता परंतु ज्यों २ वह एक के बाद एक अच्छे बुरे दृश्य होते देखता है त्यों २ अपना स्थिर किया हुआ स्टेशन समीप से समीप आता हुआ समझ कर आनन्दित होता है (जिस तरह ट्रेन में मुसाफिरी करता हुआ मनुष्य ट्रेन के एक तरफ के दृश्य देखकर विचार करता है कि अब मेरा ग्राम १० माईल ५ माईल १ माईल दूर है। अब अमुक दूसरे स्थल आवेंगे और फिर मेरा ग्राम आवेगा)।

अपनी प्रभुता कैसे स्थिर रह सके।

वन्निज्जई भिच्च गुणो न परुक्खं नय सुअस्स पच्चक्खं

महिला उनो भयावि हु न नस्सए जेण माहप्पं॥१७

वर्णनीयो भृत्य गुणो न परोक्षं न च सुतस्य प्रत्यक्षम्।

महिला तु नो भयमपि खलु न नश्यति येन महात्म्यम्॥१७॥

अर्थ—भृत्य (नौकर) के गुण परोक्ष में, सुत (पुत्र) के गुण प्रत्यक्ष में, और स्त्री के गुण उपभय (परोक्ष और प्रत्यक्ष) वर्णन न करने से अपना महात्म्य, अर्थात् प्रभुता का विनाश नहीं होसका।

विवेचन—यह एक सांसारिक और व्यवहारिक शिक्षा है. नौकर पुत्र और स्त्रीपर प्रेम भाव रखते हुये भी उन्हें सिर चढ़ाना नहीं चाहिये, यही इस गाथा का मूलार्थ है। नौकर के गुण दूसरों के सामने बयान नहीं करना, पुत्र के गुण उसके सामने नहीं कहना, और स्त्री के गुण उसके या दूसरे के सामने वर्णन नहीं करना चाहिये। नौकर के गुण दूसरे के सामने बयान करने से फल यह होगा, कि अच्छे नौकर भाग्य से ही मिलते हैं। इसलिये कोई भी मनुष्य उसे लोभ देकर अपने पास रख लेगा (और बहुत करके नौकर कोई कुटुम्बी न होनेसे नीतिवान हो तो भी यह स्वभाविक रीति है कि जहां ज्यादह पैसे मिलेंगे वहां ही जावेंगे यह साफ दिखता है) पुत्र के गुणों का उस के ही सामने कथन करने से उसका अपनी कम वय के कारण घमंडी होना संभव है। (परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि उसे बार२ टोकना, और उसके अछूत्ते दोष ही गाया करना, यह तो बिलकुल मूर्खता है प्रेम और योग्य दबाब इन दोनों के मिश्रण से ही पुत्र का हित हो सक्ता है, यह ध्यान में रखना चाहिये)स्त्री के गुण तो उसके या दूसरों के सामने नहीं कहना चाहिये। दूसरों के सामने अपनी स्त्री के गुणगान करना यह अमर्याद-बेशरमी का कार्य है। जिससे वह मनुष्य उसे स्त्री लोलुपी या स्त्री अंध पुरुष मानता है और किसी समय कुछ संकट पड़ने का भी भय रहता है। स्त्री के सामने उसके गुण गाकर बनाने से कितने ही समय कोई २ स्त्रियों के निर्लज्ज हो जाने के दृश्य दिखे हैं। इसलिये अपनी स्त्री के गुण या दोष दूसरों के सामने कहना नहीं और स्त्री के साथ इस प्रकार व्यवहार रखना चाहिये, कि जिससे उसे पति तरफ घृणा न हो, उसी

तरह वह पति को अपने में अंध बना हुआ भी न समझे। (परंतु शास्त्रकार की यह सलाह सब को एक समान उपदेश नहीं कर सकती। यह ध्यान में रखना चाहिये कि गृह सांसारिक कोई भी सलाह सब को और सब संयोगों में एक सी लागू हो सके ऐसा कदापि नहीं हो सकता। हर एक सलाह सामान्य रीति से ही दी जा सकती है। और हर एक मनुष्य को उस सलाह का ध्यान में रखकर और संभवित लाभालाभ का विचार करके ही बर्ताव करना चाहिये।

वशीकरण मंत्रः—

जंपिज्जइ पिअवयणं किज्जइ विणओ अ दिज्जए दाणं
परगुण गहणं किज्जइ अमूल मंतं वसीकरणं ॥१८॥

जल्पनीयं प्रिय वचनं कार्यो विनयश्च देयं दानम्।
परगुण ग्रहणं कार्य ममूल्य मन्त्रो वशीकरणः ॥१८॥

अर्थ—प्रिय वचन बोलना, विनय करना, दान देना, और दूसरों के गुण ग्रहण करना, यही वशीकरण का अमूल्य मंत्र है।

विवेचन—कोई भी चीज प्राप्त करने की दो राह हैं, या तो दाम देकर खरीद लो या चोरी करलो। चोरी करके लेने से राज्य दण्ड और प्रगट घृणा सहन करने का अवसर प्राप्त होवे, और वह चीज भी हाथ में से चली जावे। परंतु खरीद की हुई वस्तु हमेशा अपनी ही है और उसमें किसी प्रकार का विघ्न नहीं पड़ सकता। उसी तरह कोई मनुष्य दुनियाँ को या किसी मनुष्य

को अपने वश करना चाहता है तो उसके भी दो रास्ते हैं १ हठयोग २ राजयोग। हठयोग से वश करने वाला तो मंत्र जंत्रादि करते हैं (और अंत में बहुत समय के बाद प्रत्याघात के स्वाभाविक नियमानुसार महा दुखी बनता है) या खटपट लांच या रिश्वत से उस मनुष्य को अपने आधीन कर लेता है (जो बहुत समय तक नहीं निभ सका, और अंत में दुखदाई हो जाता है) परंतु 'राजयोग' अर्थात् अपनी भलाई दिखाने का मार्ग ऐसा सरल और प्रभावोत्पादक है, कि उसकी असर चौकस और स्थिर रहती है और किसी प्रकार का कष्ट किसी भी समय उसमें नहीं हो सका। इस राजयोग के साधन इस श्लोक में दिखाये हैं वे इस तरह हैं :—

प्रिय (निष्कपटी) वचन, विनय, हृदय, की सच्ची उदारता, अथवा बड़ा मन, गुणानुराग (गुणग्राहकता) इन साधनों से राज्य योग सिद्ध होता है। और राज्ययोग यही उच्चतम रीति का वशीकरण मंत्र है।

सब अर्थ की सिद्धि।

पत्थावे जंपिज्जइ सम्माणिज्जइ खलोवि बहु मज्झे।
नज्जइ सपरविसेसो सथलत्था तस्स सिज्झंति ॥१९

प्रस्तावे जल्पनीयं संमाननीयः खलोऽपि बहु मध्ये।
ज्ञेयः स्वपर विशेषः सकलार्थास्तस्य सिध्यंति ॥१९॥

अर्थ—प्रस्ताव अर्थात् योग्य समय पर बोलना बहुत मनुष्यों के बीच में दुष्ट मनुष्य का भी आदर करना, और

अपने में तथा दूसरों में विशेष अन्तर समझना, इसीसे सब अर्थ सिद्ध होते हैं।

विवेचन—दूसरों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना इस सम्बन्ध की सलाह इस गाथा में संक्षेप में दी है (१) किसी के साथ कुछ बोलना हो या कहना हो तो समय का बराबर विचार करना चाहिये (२) कोई मनुष्य खल दुष्ट हो तो भी सभा में या जन समूह में उसका अपमान करने से वह बिलकुल मरा सा बन जाता है और मौके से जीव लेने को तत्पर रहता है। इसलिये सच बात का मिथ्या रूप में नहीं कहना चाहिये, और सच्ची बात को गुप्त भी नहीं रखना चाहिये यह दोनों सत्य ध्यान में रखने योग्य हैं और इनके साथ यह तीसरा व्यवहार सत्य भी ध्यान में रखने लायक है कि जनसमूह के बीच में किसी का अंगत अपमान न करते मनुष्य सा उस मनुष्य का आदर करना चाहिये (इस एक उपदेश पर पोथा तैयार किया जाय इतनी बातें विचारने योग्य हैं यहां पर तो संक्षेप में इतना ही कहना बस है कि प्रत्येक मनुष्य के खराब मति उत्पादक पूर्व कृत कर्म नाश होकर एक दिन वह ज्ञानी बनने वाला है या हर एक मनुष्य की आत्म सत्ता एक बड़े तपस्वी की आत्मा सदृश है, अथवा अपन उस से चाहें जितने अच्छे हों तो भी सिद्धों की दृष्टि से तो अपन उस दोषित पुरुष से तो कुछ भी ज्यादा आगे बढ़े हुए नहीं हैं, ये अपेक्षायें ध्यान में रखकर दुष्टों के तरफ भी प्रेम भाव रखना चाहिये। दूसरे तरफ से देखो तो, उस पुरुष की भलाई के लिये, अथवा जन समाज की भलाई के लिये, ऐसे शब्द नहीं कहना चाहिये, कि जिससे उसे बुरा लगे, यह बात ध्यान में रखकर बने वहां तक जीभ को वश करके सत्य

सलाह देनी चाहिये परंतु कोई भी संयोग में मनुष्य के समान मनुष्य पर से प्रेम और सत्कार के भाव अपने दिल से न त्याग दें, यह बात अवश्य दिल में अंकित कर लेना चाहिये.(३) स्व और पर का अंतर बराबर समझ कर बोलना चाहिये, अर्थात् जितनी आत्मिक शुद्धि से अपन स्वतः एक सम्बन्ध में विचार दृढ़ करते हैं और फिर वे विचार दूसरों को जनाते हैं, उतनी ही आत्मिक शुद्धि उन विचारों के श्रोताओं में है या नहीं, यह सोचना चाहिये। नहीं तो सच्ची से सच्ची सलाह का भी अनर्थ करना संभव है। इसलिये सुननेवाले, और बोलने वाले, की मानसिक स्थिति और आत्मिक शक्ति का विचार करके उसके दिल में पैठ जाय, ऐसे स्वरूप की बात का अपने दिल में मननकर फिर बोलना चाहिये ऐसा करने से अपना परोपकारी आशय बिलकुल उम्दा रीति से सिद्ध होना संभव है।

सकुलीनता:—

मंत तंताणं न पासे गम्मइ नइ परग्गहेअ वीएहिं ।
पडिवन्नं पालिज्जइ सुकुलीणत्तं हवइ एवं ॥२०॥

मंत्र तंत्राणि न पार्श्वे गम्यनहि परगृहेऽद्वितीयैः
प्रतिपन्नं पालनीयं सुकुलीनत्वं भवत्येवं ॥ २० ॥

अर्थ—मंत्र और तंत्र नहीं रखना अकेले को परग्रह—दूसरे के यहां नहीं जाना. और प्रतिपन्न अर्थात् अंगीकार किया हुआ पूर्णता से पालना, ऐसा करने से सुकुलीनता प्राप्त होती है।

विवेचन—कुलीनता किसे कहते हैं? ब्राह्मण या वैश्य अथवा भंगी के वंशोत्पन्न होने से कुलीन और अकुलीन मानने वाले बड़ी गलती करते हैं। सच्ची कुलीनता तो गुणों पर आधार रखती है, उन गुणों में से कितनेक यहां पर थोड़े में बताते हैं। (१) मंत्र जंत्र अर्थात् हठयोग का मार्ग ग्रहण नहीं करना। (२) किसी के गृह पर अकेले जाने की बात न डालना (३) दिया हुआ वचन, किया हुआ निश्चय, स्वीकार की हुई जोखमदारी, हर कोई मुसीबत में पार लगाने का प्रयत्न करना ये तीन बातें दिखने में तो सामान्य हैं परंतु प्रत्येक में गहन गौरव है (१) हठ योग से दूर रहने को कहा अर्थात् राजयोग या पवित्र जीवन की राह पर चलने का उपदेश हो ही गया। जिस वस्तु पर या जिस बात पर अपना योग्य हक़ न हो वह वस्तु या बात मंत्र, जंत्र से या ज़ोर ज़ुल्म से प्राप्त करने की कभी इच्छा न करना, परंतु उस चीज़ या उस बात के प्राप्त होने की योग्यता मिलाने की कोशिश करना यही राजयोग है। (२) किसी के घर अकेले न जाना ऐसा व्रत पालने वाला मनुष्य सर्वदा और सर्वथा चोरी और व्यभिचारी से दूर ही रहेगा, उसी तरह उस पर किसी प्रकार का मिथ्या कलङ्क भी आने का संदेह नहीं रहेगा। (३) किसी को कोई काम कर देने का वचन दिया हो, अथवा कोई व्यापार या कोई परोपकारी कार्य करने का निश्चय किया हो तो दुःखों और विघ्नों तथा निष्फलता से दूर न भग इच्छा शक्ति को (Will Power) बलवान करके संकल्प को पार लगाना चाहिये, उसी तरह कोई भार सिर पर लिया हो उसे मध्य में ही नहीं छोड़ देना चाहिये, इन तीन संकेतों से कुलवान पना मालूम होता है सिर्फ़ अमुक वर्ण या अमुक खानदान में ही जन्म लेने से नहीं।

ये गुण जो मनुष्य ग्रहण करता है, चाहे वह पूर्व कर्म वसात इस जन्म में हलके गिने जाने वाले कुल में उत्पन्न हुआ हो, तो भी कुलवान के समान आदर पाता हैं और दूसरे जन्म में श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होता है।

प्रेम की स्थिरता।

भुंजइ भुंजा विज्जइ पुच्छिज्ज मणोगयं कहिज्ज सयं
दिज्जइ लिज्जइ उचिअं इच्छिज्जइ जइ थिरं पिम्मं ॥

भोज्यं भोजनीयं पृच्छयं मनोगतं कथनीयं स्वयम्।
देयं लेय मुचित मेषणीयं यदि स्थिरं प्रेमं ॥ २१ ॥

अर्थ—जो प्रेम को स्थिर रखने की इच्छा हो तो प्रेमी के यहां —मित्र के यहां भोजन करना और उसे अपने यहां भोजन कराना—जिमाना, मन में रहे हुए विचार पूछना, और कहना, तथा योग्य वस्तु लेना, और देना, चाहिये।

विवेचन—जंगल में रहना सरल है, परंतु बिना प्रीति के (Sympa thy) रहना बहुत कठिन है, इसलिये मनुष्य को कम से कम एक तो सच्चा मित्र अवश्य प्राप्त करना चाहिये स्वतः के विचार स्वतः की इच्छाएं स्वतः की पसंदगी (Testes) का जो मनुष्य आदर करसके कदर कर सके रस लेसके ऐसे मनुष्य से अपने को एक प्रकार का आंतरिक संतोष मिलता है औरआशा रहती है इसलिये समान प्रकृति या समान विचार रखने वाले मनुष्य के साथ मित्रता करने की खास जरूरत हर एक मनुष्य को रखना चाहिये। दुनियांदारी के सम्बन्ध में

अथवा आध्यात्मिकउन्नति के समय में सहाध्यायी अथवा मित्रकी अत्यन्त ज़रूरत है इसीलिये अच्छे मित्र को ढूंढना और उसके साथ मित्रता बराबर निभाते रहना चाहिये। दोस्ती निभी रहने के सामान्य: नियम शास्त्रकार यहां पर दिखाते हैं (१) मित्र के घर जीमना और उसे अपने घर जिमाना मतलब यह कि जीमने जिमाने के मौके लाना (२) अपने मन की बात उसे बताना कि जिससे भार हलका हो और किसी प्रकार की आशा भी बँधे उसी तरह उसके मन की बात अपने समझना और उसके सुख दुख आनद या चिंता में भाग लेना (३) लेने देने योग्य वस्तु देनेमें संकोच या स्वार्थ बुद्धि न रखना या किसी प्रकार के बदले की आशा न रखना मित्र का कोई काम करने योग्य हो तो कदापि ऐसा धारकर नहीं करना, कि दूसरे मौके पर वह मेरा काम करेगा, जिससे बदला मिल जायगा। यह कोई मित्रता नहीं कहलाती परन्तु व्यापार, या सट्टा, कहलाता है। यहां 'उचित वस्तु' इस शब्द के लाने का मतलब यह है कि मित्र किसी समय किसी अयोग्य वस्तु की या अयोग्य कार्य की मांग करे, तो उस मांग की पूर्ति कर देने में चतुराई नहीं ऐसी शास्त्रकार के कहने की इच्छा है। उस समय मित्र को मृदु शब्दों से उसकी मांग की अयोग्यता समझाना, और किसी रीति से न समझे तो उस बात पर अपने को तटस्थ रहना चाहिये। एक सुयोग्य मित्र ढूंढ निकालने में या प्राप्त करने में जितनी कठिनाइयां हैं, उससे भी ज्यादा कठिनता मित्रता निभाने में है। जो ऊपर सूचित किये हुए नियम ध्यान में रख पूर्णता से पालेगा तो मित्रता का भंग होना बहुत कम संभव है।

पृथ्वी पर अनेक रत्न ढूंढने की कला।

कोवि न अवमन्निज्जइ नय गविज्जइ गुणेहिं निअएहिं
न विम्हओ वहिज्जइ बहु रयणा जेणिमा पुहवी २२॥

कोऽपि नाप माननीयः नच गर्वनीयः गुणैः निजैः।
न विस्मयो वहनीयः वहु रत्ना येनेयं पृथिवी॥

अर्थ—किसी का भी अपमान न करना, अपने गुणों का घमंड नहीं करना, और विस्मय वहन नहीं करना, तो इन बातों से पृथ्वी बहुत रत्न वाली नज़र आती है।

विवेचन—इस पृथ्वी पर महँगे से महँगे मूल्य के अनेक रत्न प्रस्तुत हैं। परंतु वे खानों में या समुद्र के नीचे हैं। जिसकी दृष्टि वहां तक पहुंच सके वे तो दुनियां में दरिद्रता है ऐसा कदापि न कहेंगे। उसीतरह इस पृथ्वी पर उत्तमोत्तम गुण, गुणवान पुरुष, श्रेष्ठ सुख, और स्वर्गीय आनंद प्रस्तुत हैं यह बात सच्ची होने पर भी वे चीजें कौनसी जगह कौनसे तल में, या खानमें है, ऐसा न जानने से सामान्य मनुष्य यही बूम मारा करते हैं कि यह दुनियां दुखमय है इस में कोई पवित्र मनुष्य और पवित्रता है ही नहीं; सर्वत्र पाप और पापी हैं परंतु जिन सत्पुरुषों के नेत्रों में से घृणा वृति, घमंड वृति, और मोह वृति के विकार दूर होगये हैं तो उनके नेत्र इतने दिव्य बन जाते हैं, कि वे इस दुनियां में से अनेक सत्पुरुषों को, गुणों को और सुखी जनों को तथा सुखों को प्रत्यक्ष में ढूंढ सकते हैं एक चांडाल से राजा के महल के दिवानखाने की साहिबी नहीं देखी जाती, उसी तरह एक विकारी पुरुष से

दुनियां में के विकार रहित पात्र के गुण नहीं देखे जासके। स्थूल दृष्टि से सूक्ष्म पदार्थ नहीं देखे जाते सूक्ष्म पदार्थों के लिये सूक्ष्म दृष्टिका ही प्रसार करना चाहिये। जो सूक्ष्म दृष्टि और सारीसूक्ष्म देह (पांचों सूक्ष्म इंद्रियां) हरएक मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त हुई हैं परंतु उनका उपयोग कभी न होता हो तो लगभग सब मनुष्यों की वे इंद्रियां निकम्मी हो जाती हैं। परंतु जो मनुष्य किसी पर तिरस्कार भाव न रखना सीखे (एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य के मध्य में रखी हुई समानता पहिचाने) और स्वतः के गुण का शक्ति का घमंड न करते जो कुछ खुदको मिला है तो भी अभी बहुत प्राप्त करना शेष है उस हिसाब से मिला हुआ शून्य के बराबर है, ऐसा समझने की बराबर कोशिश करके लघुता धारण करें, तथा अच्छी और बुरी किसी चीज से या बनावट से विस्मय न होने पद्गल और कर्म की अद्भुत शक्तियां प्राकृतिकता से ऐसी ही होती हैं, ऐसा समझ कर एक या दूसरी तरह मोह में न पड़े अर्थात् हर्ष, खेद, या दिग्मूढ़ता में गिर न पड़े. इन गुणों के प्रसार करने के फलसे उसकी सूक्ष्म इन्द्रियां (चक्षु इत्यादि सब इन्द्रियां) ऐसी तन्दुरुस्त बनती हैं कि वह सूक्ष्म पुद्गल, गुण वगैरह देख सका है, स्पर्श करसका है, सुन सका है, वश में कर सका है। इस शक्ति के प्रभाव से वह इस दुनियां के व दुनियां के बहार के (सूक्ष्म भुवनोंके-स्वर्ग के) उत्तम गुण और उत्तम पुरुषों को देख सका है और उनसे प्राप्त होता हुआ आनंद खुद ले सका है। ऐसा मन होने पर यह दुनियां पवित्रता और पवित्रात्माओं से भरी हुई दिखेगी। दुर्गुणों और दुर्गुणी आत्माओं के सम्बन्ध के ख्याल करने की उनको फुरसत भी

नहीं मिलेगी। इतने बड़े उच्च लोक Higher Planes देखने और भोगने को मिलेंगे। पुद्गल का ऐसा स्वभाव है कि स्थूलपुद्गल और सूक्ष्म इन्द्रियों का पृथ्वी में के स्थूल पदार्थों के साथ ही सम्बन्ध जुड़ सक्ता है और सूक्ष्म पुद्गल और सूक्ष्म इन्द्रियों का इस पृथ्वी के तथा दूसरी दुनियां के सूक्ष्म पदार्थों के साथ सम्बन्ध हो सक्ता है। मछलियां पानी में ही गमन कर सक्ती हैं, समली पवन में ही गति कर सक्ती है और मनुष्य पृथ्वी पर ही चलसक्ता है उसी तरह सूक्ष्म इंद्रियों का जिसने विकास किया है, ऐसे जीव ही मात्र सूक्ष्म भुवनों में गति कर सक्ते हैं और यह तो सिद्ध ही है कि सब उत्तमता और समृद्धि इस दुनियां के तथा दूसरी दुनियां के सूक्ष्म विभाग में ही भरी हुई है।

१ मार्गानुसारीः— परम पुरुषों को सम्पूर्णता पर पहुंचाने वाली राह—सड़क-Royal Road-राजयोग बताते हैं। उसका प्रारम्भिक भाग गृहण करने वाला मनुष्य अथवा सामान्य अकल Common sense से हित अहित का विचार कर सके और नीति का उलंघन न कर सके ऐसा मनुष्य। (हां, इतने गुण वाला मनुष्य वितराग वचन का प्रशंसक होताही है और उसे परम वचनों से प्रेम भाव उत्पन्न होताही है) जिससे मार्गानुसारी का अर्थ Sympathiser of the Royal Road prescribed by Arhats or Glorious Souls ऐसा भी कह सके हैं।

२ मार्गानुसारी के बाद की पंक्ति श्रावक पने की है अर्थात् जिस समय मार्गानुसारी मनुष्य अरिहंत के वचन श्रवन

करना प्रारंभ करता है, और जिस सड़क पर पहिले उसने सिर्फ पांव रक्खे हैं, उस सड़क पर आगे बढ़ने के लिये यथा शक्ति 'निश्चय (अथवा व्रत) अंगीकार करता है, उसी समय वह श्रावक कहलाता है। 'श्रावक' पने की हालत से ही आत्म भोग अर्थात् 'अहम्' पनेका यज्ञ प्रारंभ होना चाहिये परंतु वह यज्ञ सम्पूर्ण न होसके स्वरक्षण तरफ दृष्टि रखने के साथ ही वह यज्ञ प्रारंभ रखना चाहिये, इतना ही इसका कर्त्तव्य क्षेत्र है (यह देखते श्रावक का अर्थ) A member o the exoteric circ'e of Arhat, whose vow is partial self-renunciation ऐसा होसक्ता है।

३ अपूर्ण आत्म भोग वाली दशा के पश्चात् सम्पूर्ण आत्म भोग वाली दशा अथवा अकिंचन-त्यागी के समान हालत अंगीकृत करने की है परंतु वह स्थिति स्वीकृत करते समय जिन्दगी पर्यंत का इकरारनामा करने का होने से कदाचित आगे बढ़ते समय यह प्रण टूटे नहीं, इसलिये कुछ माह (या जरूरत दिखे तो थोड़े वर्ष) तक इस स्थिति की उम्मेदवारी करना चाहिये, अर्थात् कच्ची दिक्षा अथवा लघु दिक्षा लेना चाहिये, और त्यागी के समान व्रत पालने की टेव डालना चाहिये। (An apperetice to Complete self-renuniiation)

४ और उसके पश्चात् ऐसी आदत से पूर्ण विश्वास होजाय कि अब व्रत बराबर पल सकेंगे उसके पश्चात् 'जिन्दगी भर के सम्पूर्ण आत्म भोग अर्थात्' साधुत्व गृहण करना चाहिये और इस राह से मोक्ष अचूक है। जो रास्ता बराबर गृहन करने में आवे तो (A sadhu is a member

of the esoteric of Arhats whose vow is Complete self-renunciation) जिससे अपने शास्त्रकार कहते हैं उसी तरह चलने से मनुष्य तिरस्कार भाव रहित, लघुत्व भाव सहित और निर्मोही बनता है तबही उसकी सूक्ष्म इंद्रियां Perception of the (inner bodies ie of the तेजस and कारमान देह) खिलती है और उससे उसकी दृष्टि के सामने सब समृद्धि और सब गुण खुले हो जाते हैं।

उच्चता किससे मिलती है ?

आरंभिज्जइ लहुअं किज्जइ कज्ज महंत मवि पच्छा
न य उक्करिसो किज्जइ लब्भइ गुरु अत्तणं जेण।२३

आरंभनीयं लघु कृत्यं कार्यं महदपि पश्चात्।
न चोत्कर्षः कार्यः लभ्येत गौरवं येन ॥२३॥

अर्थ–प्रथम लघु–छोटा काम शुरू करना, फिर बड़े काम को हाथ लगाना और उत्कर्ष नहीं करना, जिससे गुरुत्व बड़प्पन मिलता है।

विवेचन—मनुष्य को सदैव उच्च आशयों (Higest good) की कल्पना करना चाहिये, व्यापार में, गृहव्यवस्थामें आध्यात्मिक उन्नति में, सब में श्रेष्ठ दृष्टि बिंदु अथवा उच्च से उच्च पूर्णता प्राप्त करने का संकल्प करना चाहिये यह 'निश्चय नय, की बात हुई। परन्तु व्यवहार नय इस रीति से ध्यान में रखना चाहिये, कि प्रथम छोटे काम से शुरू करके शनैः योग्यता बढ़ाते जाना चाहिये और बाद में ही बड़े काम हाथ में

लेना चाहिये। एक कारकून का कार्य सीखे बिना एक बड़े दर्जे के मैनेजर की जगह का भार लेने से उस दर्जे का व अपना पूर्ण अहित होना संभवित है। छोटे या कम भार वाले रोजगार द्वारा व्यापारी को प्राप्ति हुए सिवाय बड़े व्यापार का काम शुरू करने से सचमुच में दिवाला निकलना संम्भव है। प्रथम मार्गानुसारी बन कर व्रतधारी श्रावक बने फिर दिक्षा का उम्मेदवार बनकर उसके पश्चात् ही दीक्षित अर्थात् साधु हो तबही यह महा जोखमदारी का कार्य (और उसी तरह महा फलदायी) व्रत पूर्णता से पल सके, नहीं तो १०० में से ६६ अंश तक संम्भव है कि ऊंचे पहाड़ पर से गिर पड़ने वाले के जिस तरह टुकड़े २ हो जाते हैं (कि जितने टुकड़े सामान्य उंचाई पर चढ़ने वाले के नहीं होते हैं) उसी तरह वे आत्माएं एक सामान्य गृहस्थाश्रमी मनुष्य से भी ज्यादह अधोगति को प्राप्त होती हैं।

इस तरह जो दृष्टि बिन्दु उच्च से उच्च कल्पित है तो भी प्रारम्भ तो छोटे भार वाले कार्य से ही करना चाहिये और योग्यता बढ़ाते जाने के साथ ही बड़ी जोखिमदारी का कार्य उठाना चाहिये।

इतना ही नहीं परन्तु ज्यों २ बड़ी जोखमदारी वाली योग्यता प्राप्त होती जाय वैसे २ फूलना नहीं चाहिये। जिस समय, 'मैं बड़ा' 'मैं अच्छे कार्य करने वाला' 'मैं सामर्थ्य-वान' अगर 'मैं पवित्र' ऐसा अहम् भाव आया कि उसी समय सब आत्मिक शक्तियों का ह्रास हो जाता है और वह मनुष्य निस्तेज, ईश्वर दिलासा रहित,—निर्माल्य बन जाता है और एक टूटे हुए जहाज के खोखे के समान हो जाता है। यह एक अनुभविक और आध्यात्मिक सत्य है।

संसार का छेदन कैसे हो ?

झाइज्जई परमप्पा अप्प समाणो गणिज्जइ परो।
किज्जइ न राग दोसो छिन्निज्जइ तेण संसारो।२४

ध्येयः परमात्मा आत्मसमो गणनीयः परः।
कार्यो न रागद्वेषौ छेदनीयस्तेन संसारः ॥२४॥

अर्थ—परमात्मा का ध्यान धरना चाहिये (अपनी) आत्मा के समान दूसरों की आत्मा को गिनना चाहिये, राग और द्वेष नहीं करना चाहिये जिस से संसार का छेदन होसकता है

विवेचन—शास्त्रकार ने प्रथम सामान्य धर्म समझाया, फिर अपनी तरफ के व्यवहार को दिखाया, कुटुम्ब तरफ के बर्त्ताव को समझा कर जन समाज के साथ किस तरह बर्त्ताव करना यह बताया और फिर समान वृतिसमताल वृति (सम्यक्त्व) सीखकर परम दशा की उच्च टेकरियों पर चढ़ने का आशय दृष्टि आगे रखकर क्रम २ से आत्मिक गुण खिलाने का संकेत किया अब उन को सिर्फ एकही गाथा कहना शेष है और उस में इस संसार के छेदन करने का मुक्ति का रास्ता बताते हैं। मुक्ति के राह की योग्यता प्राप्त करने का उपदेश तो पहिले दिया गया है, और इस गाथा में भी उस रास्ते की सूचना करके कहते हैं कि (१) परमात्मा का ध्यान धरना (२) अपनी आत्मा के समान सब की आत्मा को गिनना (३) और राग द्वेष से दूर रहना ये तीनों शिक्षाएं सामान्य दीखती हैं परन्तु इन में अत्यन्त अमूल्य तत्व भरा हुआ है कि जो पिछली गाथाओं का विवेचन पढ़

लेने पर सहजही ध्यान में आजाता है (१) जिस का ध्यान धरें वैसे हो जांय ऐसा मानस शास्त्र का नियम है। दर्द और आरोग्य, आबादी, और अवनति, मैत्री, और शत्रुता ये प्रायः मन में वारम्बार आते हुए संकल्प-विचार-भावनाओं के स्थूल परिणाम हैं और वारम्बार मन में परमात्मा के स्वरूप का विचार करने में आवे तो क्रम २ से यह दशा प्राप्त हो सकती है। इसलिये मोक्ष के ३ रास्ते में से 'भक्ति योग' एक व्यवहारिक सरल मार्ग गिना जाता है प्रार्थना, भक्ति परमात्मास्वरूप का चिंतन, ये परमात्म प्राप्ति के अचूक साधन हैं और जहां उनकी साधना है वहां हलकी प्रकृतियां ठहर भी नहीं सकतीं (२) संसार से पार उतरने की दूसरी राह सब को अपने समान गिनने का सद्गुण है अपने जीवन की रक्षा और सुख के लिये मनुष्य को जितनी आवश्यकता है उतनी ही जरूरत हरएक प्राणी के रक्षण और सुख के लिये रक्खी जाय तो एक शरीर में छुपी हुई आत्मा विकाश पाकर अनंत भव तक प्रकाशित होवे। उस का उच्ची करण हो और ऐसा होते २ वह सर्व व्यापक बनकर सर्व व्यापक परमात्म पद में मिल जाय। इसीलिये सहानुभूति (Sympathy) सहिष्णुता (Toleration) बंधु भाव, दया, निःस्वार्थ प्रेम, स्वार्थ त्याग, आत्म भोग। इन गुणों का विकाश करने का प्रयत्न प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिये, कि जिस से इस राह से भी मोक्ष नामक लक्ष्य बिन्दु पर जा पहुँचे। याद रखना चाहिये कि मोक्ष या स्वर्ग यह कुछ किसी का फल अर्थात् इनाम नहीं, परन्तु ये गुण फैलाते फैलाते जितनी सम्पूर्णता पर पहुंच सकें उतनी ही सपूर्णता जो भुवनों में विस्तिरित हो रही है उन भुवनों का निवास स्वाभाविक तौर

से ही हो सकता है । (३) मुक्ति की तीसरी राह राग द्वेष से मुक्ति होने की है कोई ना पसंद पदार्थ जीवों या दृश्यों पर द्वेष नहीं करना, और पसंद पदार्थों जीवों और दृश्यों पर मोहित न हो जाना, यह इस शिक्षा का संक्षेपार्थ है परन्तु यह शक्ति प्राप्त होना, अत्यन्त कठिन है और उसे प्राप्त करने के प्रथम जड़ चेतन का स्वरूप समझने की अर्थात् ज्ञान की बहुत जरूरत है आत्मा क्या है ? वह कैसे २ शरीर धारण करती है ? और किस से ? उसकी कितनी शक्तियां हैं ? उस के अंग रक्षक अथवा शरीर कितने हैं ? और हरएक शरीर का स्वरूप कैसा है ? दुनियां में कितनी जाति के जड़ पदार्थ हैं ? और उन में कैसे चमत्कार भरे हुए हैं ? ऐसे अनेक प्राकृतिक स्वरूप समझने के साधन जैन शास्त्रों में प्रस्तुत हैं कर्म प्रकृति, जीव विचार इन दोनों के सम्बन्ध में जैन शास्त्रों में बहुत विवेचन किया है । और अनेक भेदानुभेद दिखाकर हरएक विषय का अच्छा स्पष्टीकरण किया है । आज के सान्यन्स अथवा पदार्थ विज्ञान शास्त्र के मूल तत्वों को ज्ञान तथा आज के मानस शास्त्र (साईकोलोजी) का सामान्य ज्ञान जिसने प्राप्त किया है उसे जैन शास्त्रों का जड़ चेतन का बारीक ज्ञान समझना मुश्किल न होकर उलटा रसीला होगा ।

इस तरह या तो ज्ञान योग का रास्ता लेओ या भक्ति,योग का रास्ता गृहण करो अथवा अपने स्वार्थ के भोग से जगत के हित करने का कर्म योग मार्ग स्वीकारो तीनों रस्ते एक ही मोक्ष नगरीको लेजाने वाले हैं। तीनों में अपनी२ खास कठिनाइयां भरी हुई पड़ी हैं । तीनों में अपनी२ खास खूबियां भी हैं।

मनुष्यको स्वतःकी प्रकृति अनुसार इन तीनोंमें से एक रास्ता पसंद करना चाहिये परंतु जो मार्ग पसंद हो उस मार्ग पर चुस्तता अभंगता से अलग रहना चाहिये (उस मार्ग का त्याग न होना चाहिये) "सिर दे वह माल खाय" यह ध्यानमें रखने योग्य उपदेश है दही में और दूध पांव रखने से यतोभ्रष्ट-ततोभ्रष्ट हो जाते हैं यह खास लक्ष्य में रखना चाहिये। बहुत नफा बड़ी मिहनत के विना नहीं मिलता है, यह स्मरणीय बात है। ढोंग या पोल रखनेवाला मनुष्य सिर्फ मार खाने के लिये ही ऐसा करता है, यह कभी भूलना नहीं। सत्य के दरबार में ढोंग, या पोल, या बाहरी दृश्य, या दगा या शिथिलता, तिल मात्र भी नहीं चल सक्ती ।

इस तरह शास्त्रकार का सामान्य नीति से प्रारंभ हुआ उपदेश परम पद प्राप्ति की राह दिखाकर समाप्त होता है, शुद्ध बुद्धि से-मुमुक्षुता से बांचनेवालों का इस उपदेश से कल्याण हो ?

उपसंहार ।

उवएस रयेण मालं जो एवं ठवइ सुट्ठु निअकंठे ।
सो नर सिव सुहलच्छी वच्छयेल रमई सत्थाइ२५
ए अं पउमजिणेसर सूरि वयणगुंफ रम्मिअं वहउ
भव्य जणो कंठ गयं चिउलं उवएस माल मिणं २६

उपदेश रत्न माला य एवं स्थापयती सुष्ठु निज कंठे ।
सनरः शिव सुख लक्ष्मी वक्षःस्थले रमते स्वेच्छया ।

एवम पद्ध्म जिनेश्वर–सूरि वचन गुम्फ रमणीयां बहतु।
भव्य जनः कण्ठगतां विपुलामुपदेश माला मिमाम्॥

अर्थ—इस तरह जो मनुष्य उपदेश रूपी रत्न माला को अच्छी तरह से कंठ में धारण करता है वह नर शिव सुख रूपी लक्ष्मी के वक्षःस्थल में स्वेच्छा से रमन करता है। इस तरह पद्म जिनेश्वर सूरि के वचन की रचना बहुत ही रमणीक और ऐसी विस्तीर्ण इस उपदेश की माला को भव्य जन गले में धारण करो। अंकित करो।

सम्पूर्ण

विवेचन का प्रत्येक शब्द शांतता से पढ़ने और सम्पूर्णता से समझने की प्रत्येक पाठक महाशय से सप्रेम विनय है।

—:०:—